ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor (RJIF): 8.4
IJAR 2024; 10(1): 212-214
www.allresearchjournal.com
Received: 10-12-2024
Accepted: 13-01-2024

मीरा कश्यप
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
के0जी0के0 महाविद्यालय,
मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
मीरा कश्यप
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
के0जी0के0 महाविद्यालय,
मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत

मोहन राकेश के नाटकों में स्त्री–पुरूष के बदलते संबंध

मीरा कश्यप

सारांश
रचनाकार अपनी रचनात्मकता की अभिव्यक्ति के लिए कई माध्यमों का चयन करता है, अभिव्यक्ति के अलग–अलग माध्यमों के बावजूद वह अपनी मूल प्रकृति से अलग नहीं होता। मोहन राकेश की कहानियों, उपन्यास व नाटकों का समग्र अध्ययन करने पर यह तथ्य स्वतः स्पष्ट हो जाता है, मोहन राकेश ऐसे रचनाकार हैं, जो कहानी की गरिमा उपन्यास के गठन तथा नाटक की क्षमता व सीमा के अनुरूप लेखकीय उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हैं।
अपने नाटकों के द्वारा मोहन राकेश ने रंगमंचीय कौशल को उन्नत बनाया, इसीलिए उन्हें रंगशिल्पी स्वीकार करने का अपना औचित्य है। वे हिन्दी के श्रेष्ठ नाटककारों में से एक हैं, उन्होंने शिल्प और कथ्य के धरातल पर नये प्रगतिशील आकर्षक नाटक लिखे, जिसके काव्यात्व रंगमंच की आभा के समक्ष इनके नाटक कहीं भी फीके नहीं पड़े, जगदीश चन्द्र माथुर के पश्चात मोहन राकेश शायद प्रथम ऐसे नाटककार प्रमाणित होते हैं, जिन्होंने कथ्य को दृश्यत्व प्रदान करने की आवश्यकता और अनिवार्यता समझी, इन्होंने परम्परा से हटकर एकदम परे नये शिल्प, शैली और भावबोध के नाटक प्रस्तुत किए थे।

कूटशब्द : आन्तरिक द्वंद्व, अन्तर्वेदना, हताषा, अस्तित्व, तनाव, कुंठा, बिखराव, मनोवैज्ञानिक चित्रण।

प्रस्तावना
मोहन राकेश ने हिन्दी को अपने नाटक तब दिये जब उसकी सबसे ज्यादा आवश्यकता थी, ऐसा नहीं कि हिन्दी में नाटक नहीं हैं, लेकिन जो हैं वे पठनीय तो हैं, परन्तु मंचन के अनुकूल कम। मंचीयता से युक्त उनके नाटकों से उनकी मूल चेतना ओझल नहीं होती, उत्तरोत्तर निखरती है, वे ऐसे रचनाकार हैं जो अपने कथ्य से भटकते नहीं, विचारों से हटते नहीं, न सन्दर्भों से कटते हैं।
'आषाण का एक दिन' उनके द्वारा रचित प्रथम नाटक है, जिस पर मोहन राकेश जी को संगीत का अकादमी पुरस्कार भी मिला। राकेश जी का यह नाटक प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों से सर्वथा भिन्न है, इसमें उन्होंने न तो अतीत के गौरव का मान गाया है न ऐतिहासिक तथ्यों को प्रमाणित करने की कोशिश की है, वास्तव में 'आषाण का एक दिन' का कालिदास भी ऐतिहासिक महाकवि कालिदास से बहुत अलग प्रतीत होता है, अपने नाटक में राकेश जी ने उसे एक साधारण मानव के रूप में ही चित्रित किया है, उसकी समस्त दुर्बलताओं और बुराइयों के साथ, जिसके माध्यम से आज के आधुनिक साहित्यकार के आंतरिक द्वंद्व को ही स्पष्ट करने का उन्होंने प्रयास किया है। देखा जाये तो इस नाटक का नायक कालिदास ही है, पर क्या सम्पूर्ण कथा मल्लिका के त्याग एवं प्रेम की कथा नहीं है? ''एक लड़की जिसने भावना में भावना का वरण किया, वह कालिदास से असीम प्रेम करती है, परन्तु उस सम्बन्ध को किसी रिश्ते का नाम नहीं देना चाहती, उसका यह शाश्वत संबंध हर चीज से परे है, यहाँ तक कि उसका कोई भी नाम नहीं है, वह स्वयं कहती है 'मैं उसे कोई नाम नहीं देती।''[1] वह केवल एक शाश्वत एवं अटूट संबंध पर ही विश्वास करती हे, जो केवल भावनात्मक रूप से स्वीकारा जा सकता है, यथार्थ के धरातल पर उसका कोई महत्व नहीं।' इस नाटक में राकेश जी ने एक और चरित्र सामने रखा है, और वह है अम्बिका, जो आज की यथार्थवादी और भौतिकवादी दृष्टि का परिचायक है। मल्लिका के साथ यह बात नहीं है। वह किसी भी प्रकार से नहीं चाहती कि वह कालिदास की रूकावट बने। वह कहती है– ''तुम जानती हो उनका जीवन परिस्थितियों की कैसी विडंबना में बीता है, मातुल के घर में उनकी क्या दशा रही है? उस साधनहीन और अभावग्रस्त जीवन में विवाह की कल्पना ही क्यों कर की जा सकती थी?''[2] परन्तु जब वह साधन सम्पन्न हो जाता है, अभाव का प्रश्न ही नहीं उठता तब भी मल्लिका इस संबंध को किसी भी रिश्ते में बांधना नहीं चाहती। वास्तव में वह एक पूर्ण समर्पित नारी के रूप में हमारे सामने आती है, जो अपने प्रेमी को पूर्ण रूप से समर्पित होने के बाद भी कुछ नहीं चाहती, वह जानती है– ''माँ आज तक का जीवन जिस किसी तरह बीता है, आगे भी बीत जायेगा, आज जब उनका जीवन

एक नई दिशा ग्रहण कर रहा है, मैं उनके सामने अपने स्वार्थ का उद्घोष नहीं करना चाहती।''[3] यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या मल्लिका के हृदय में कभी भी यह भावना नहीं आई कि वह कालिदास के हृदय की स्वामिनी होने के साथ–साथ उसके घर की भी स्वामिनी बने ? पर मल्लिका का चरित्र इन साधारण बातों से ऊपर है। मल्लिका सब कुछ सह कर भी कालिदास को विदा करती है, वह उसकी बेरूखी पर भी नहीं टूटती, उस दिन भी नहीं टूटती जब उसे उसके विवाह का समाचार मिलता है, क्योंकि इसके बाद भी उसे आशा थी कि वह अपनी रचनाएं संसार को देगा, पर जिस दिन उसे समाचार मिलता है कि कालिदास ने कर्तव्य से मुख मोड़ा है, उसने सन्यास ले लिया है। वह फूट पड़ती है– ''तुमने सन्यास नहीं लिया, मैने इसलिए तुमसे यहाँ से जाने के लिए नहीं कहा था'– मैने इसलिए भी नहीं कहा था कि तुम जाकर वहीं का शासन भार संभालो, फिर भी जब तुमने ऐसा किया मैंने तुम्हें कामनाएँ दीं– मैं यद्यपि तुम्हारे जीवन में नहीं रही, परन्तु तुम मेरे जीवन में सदा वर्तमान रहे हो। मैने कभी तुम्हें अपने पास से हटने नहीं दिया, तुम रचना करते रहे ओर मैं समझती रही कि मैं सार्थक हूँ, मेरे जीवन की भी कुछ उपलब्धि है और आज तुम मेरे जीवन को इस प्रकार निरर्थक कर दोगे।''[4] इस पूरे कथन में मल्लिका साधारण स्त्रियों की तरह प्रलाप नहीं करती। कालिदास को विवाह करने पर ताने नहीं देती, उसके दूर चले जाने पर अपने अंतरवेदना की, असहायता को नहीं दर्शाती, पर वह हताशा में अपने जीवन के निरर्थकता का प्रश्न जरूर उठाती है।

राकेश की मल्लिका किसी भी अर्थ में ऐतिहसिक पात्र नहीं है। उसका अर्न्तद्वंद्व उसकी वेदना आधुनिक नारी की वेदना है जिसके अस्तित्व के सामने समाज आज भी कई प्रश्न चिह्नों को खड़ा कर देता है, जो आज भी पूर्ण रीति से अपने कार्य में स्वतंत्र नहीं हैं, यहाँ तक कि प्रेम करने की भी पूर्ण स्वतंत्रता उसे प्राप्त नहीं है। राकेश जी ने आधुनिक युग की नारी को मल्लिका के रूप में एक अस्तित्व बोध दिया है। स्त्री जिसका अपना एक अस्तित्व होता है, व्यक्तित्व होता है जो किसी का हिस्सा नहीं उसकी निज सम्पत्ति का भाग होता है परन्तु स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व की कल्पना को आज कितने लोग सहज स्वीकार करते हैं? जब उसकी माँ उसके विवाह के लिए अग्निमित्र को भेजती है, और वह वापस आकर उन्हीं आरोपों की चर्चा अम्बिका से करता है, उस बात को सुनकर मल्लिका कहती है– उनके प्रसंग में मेरी बात कहीं नहीं आती, मैं अनेकानेक साधारण प्राणियों में से हूँ, वे असाधारण हैं उन्हें जीवन में असाधारण का ही संसर्ग चाहिए था।''[5] दूसरी ओर कालिदास है जो स्वयं हर चीज से भागता है, मल्लिका के लिए कुछ भी नहीं करता, फिर भी वह सोचता है कि वह जब भी उससे मिलेगा, उसे गलत नहीं समझा जायेगा, क्या कालिदास के इस विश्वास से मल्लिका का पक्ष ही उज्ज्वल नहीं होता? यदि पूरे नाटक में कहीं भी कालिदास निर्णय ले सका होता तो मल्लिका की स्थिति में बहुत अन्तर आता, परन्तु मल्लिका के लिए तो कालिदास की इच्छा ही सर्वोपरि थी, वह अलग से कुछ नहीं थी, उसका सब कुछ कालिदास में निहित था– मल्लिका जानती है कि उसे कालिदास से कुछ प्राप्त नहीं होगा और न वह इन भौतिक वस्तुओं की लालसा ही करती है, क्योंकि वह जानती है कि यही आवश्यकताएं ही सब कुछ नहीं हें उसके लिए तो यही बहुत है। इन पर तुम जब, जो भी लिखोगे उसमें मुझे अनुभव होगा कि मैं भी कहीं हूँ मेरा भी कुछ है।''[6] अंत में हम कह सकते हैं कि परम्पराओं से हटा हुआ नाटक होने के पश्चात भी 'आषाण का एक दिन' की नायिका राकेश की आधुनिकता के बाद भी बहुत पीछे है, उसे त्याग और ममता की मूर्ति बना दिया गया है। 'लहरों का राजहंस' राकेश जी का दूसरा नाटक है, यह भी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखा हुआ नाटक है परन्तु केवल उसी अर्थ में ऐतिहासिक है जिस नाते 'आषाण का एक दिन'। नंद और सुंदरी ऐतिहासिक पात्र होते हुए भी आधुनिक है, उनका तनाव अंतर्द्वंद्व सब आज के मानव का ही है। 'लहरों के राजहंस' का मुख्य पुरूष चरित्र नंद है जिसे मोहन राकेश ने एक संशयग्रस्त व्यक्ति, एक प्रश्न चिन्ह के रूप में प्रस्तुत किया है, मोहन राकेश जी नंद के बारे में स्वयं कहते हैं– ''नंद का ऐतिहासिक रूप जो भी मेरे लिए वह एक ऐसे मन का प्रतीक है जो निरन्तर अपने अंतर्द्वंद्व से पीड़ित है, वह जीवन को उसकी समग्रता में जानना और जीना चाहता है। इसलिए बुद्ध और सुंदरी दोनों की जीवन दृष्टियाँ उसके लिए एकांगी हैं, वह जिस आसक्ति में जीता है, वह आसक्ति उसके लिए छलना या भ्रान्ति नहीं, अपने अस्तित्व बोध की अनिवार्यता है– परन्तु उस आसक्ति में जीकर वह जितना अधूरा है, उससे बचकर भी अपने को उतना ही अधूरा अनुभव करता है और क्योंकि अपने अधूरेपन को भी स्वीकार नहीं कर पाता, इसलिए अंत तक उसकी छटपटाहट ज्यों कि त्यों बनी रहती है।''[7] नंद निरंतर एक द्वंद से ग्रस्त चरित्र के रूप में नाटक में चित्रित हुआ है। मनुष्य संसारिक सुख भोग की कामना करता है, क्योंकि वह भौतिक संसार से आबद्ध है, परन्तु वह उससे भी आगे जाने की चेष्टा करता है और तब ही उसके द्वंद का आरम्भ होता है। वह भोग एवं योग, राग और बैराग्य, देह और जीवन के मध्य समरसता चाहता है जो उसकी अपनी मानसिक दुर्बलता के कारण कभी संभव नहीं हो पाती। ऊपरी तौर पर यह प्रतीत होता है कि नंद के अन्तर्द्वंद के पीछे बुद्ध ओर सुंदरी है, पर ऐसा नहीं है। गौतम के आगमन से पूर्व भी नंद के मन में द्वंद्व है और इसलिए वह सम्पूर्ण समर्पित भाव से सुन्दरी में लिप्त नहीं हो पाता, वह पूरा कभी जी ही नहीं पाता। तीसरे अंक में वह स्वयं कहता है– ''मैं कब से जानता हूँ कि मैं पूरा यहाँ जीने के लिए नहीं हूँ।''[8] यह पूरा नाटक नंद की अपने आप की खोज का नाटक है। वह न गौतम बुद्ध के बताए मार्ग पर चलना चाहता है और न सुंदरी के अनुसार जीने के लिए अपने आपको तैयार कर पाता है – ''अपने कथ्य में बहुत व्यापक न होते हुए पूरा नाटक जैसे कहना चाहता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन का, अपनी मुक्ति का पथ स्वयं ही खोजता है, दूसरों के द्वारा खोजा गया पथ अपने आप में विशिष्ट होते हुए भी अधूरा और निरर्थक लग सकता है, गौतम बुद्ध द्वारा खोजा गया पथ महत्वपूर्ण होते हुए भी नंद के संवेदनशील हृदय को आश्वस्त नहीं कर पाता।''[9]

अपने केश कटवाने के बाद जब वह घर लौटता है तो एक लादा गया विश्वास, उसके भीतर एक विद्रोह भर देता है। वह बार–बार अपने आपसे यही प्रश्न करता है– ''उन्होंने केश कटवा दिये तो क्या व्यक्ति के रूप में मैं अधिक सत्य हो सका? जिह्वा कटवा देते, हाथ–पैर कटवा देते तो और अधिक सत्य हो जाता।''[10] परन्तु अंत में यही नंद नहीं रह जाता वह सुन्दरी से यह भी कहने का साहस करता है – ''मैं जानता हूँ तुम्हें यह सब सुनना सह्य नहीं है, इसलिए सह्य नहीं है कि तुम समझती हो तुम्हीं वह केन्द्र हो जिसके वृत्त में मैं एक नक्षत्र की तरह घूमता हूँ, परन्तु मैं अपने को एक ऐसे टूटे हुए नक्षत्र की तरह पाता हूँ जिसका कहीं वृत्त नहीं है उसकी कोई धूरी नहीं है।''[11] अपने पहले दो नाटकों में मोहन राकेश ने ऐतिहासिक परिवेश को स्वीकारा है, परन्तु 'आधे–अधूरे' नाटक में उससे हटकर एक दूसरी जमीन को उन्होंने महत्व दिया है, वह है सामाजिक पृष्ठभूमि। वास्तव में इसमें उन्होंने एक कठोर यथार्थ को अभिव्यक्ति दी है। इस नाटक में भी उन्होंने स्त्री–पुरूष के आपसी संबंधों को जो रूप दिया है, वह तनावपूर्ण है एक पूरा परिवार ही घुटन की स्थिति में जी रहा है, आपस में उनका कोई भी अंतरंग या रागात्मक संबंध दृष्टिगोचर नहीं होता। न केवल पति–पत्नी के आपसी संबंध तनावपूर्ण है, माता–पिता के बच्चों से, भाई–बहन के आपस में किसी के भी संबंध केवल झेलने वाले लगते हैं। किसी भी प्रकार की आदर की भावना किसी के भी प्रति किसी के मन में नहीं है, केवल है तिरस्कार और निरादर। ''स्त्री–पुरूष दोनों एक ऐसी स्थिति में जी रहे हैं, मानो एक दूसरे

को झेल रहे हैं, सह रहे हैं। अधूरे संबंधों का ऐसा नाटक जिसमें कहीं भी, किसी भी पात्र के द्वारा संबंधों को पूर्ण करने का असफल प्रयास भी नहीं किया गया है– जिन्दगी किसी तरह कटती ही चलती है हर आदमी की।''[12] क्या इस तरह जिन्दगी को काटना ऊब को नहीं दर्शाता ? जिन्दगी गुजारने का कोई उत्साह नहीं, क्योंकि आपसी संबंध में तनाव है। राकेश जी ने इस नाटक में मध्यवर्गीय परिवार की स्थिति को बहुत ही सजीव रूप में चित्रित किया है। ''ऐसा परिवार जहाँ बस घुटन है, तनाव है, कुंठा है। ऐसा परिवार जहाँ माँ भी व्यक्तियों से संबंध रखती है, इतना ही नहीं जहाँ लड़की स्वयं माँ के प्रेमी के साथ रातों रात भाग जाती है। पिता की स्थिति एक रबर स्टाम्प से ज्यादा नहीं है। उस परिवार में आपसी सौहार्दपूर्ण संबंधों की क्या आशा की जायेगी जहाँ, हर चरित्र अतृप्त है, अभाव और कुंठाओं के आक्रोश और विषाद से अभिशप्त है, अपने पारिवारिक नातों से आशंकित और कुपित है, हर कोई अपने को बेगाना, अजनबी महसूस करता है।''[13] स्त्री–पुरूष जो एक परिवार के आधार स्तंभ है, जब उन्हीं का विश्वास डोलता है तो किसी अन्य से उम्मीद ही क्या की जा सकती है। स्त्री बिल्कुल टूट चुकी है। स्वयं राकेश जी भी इस बात को मानते हैं– ''कहते थे बहुत भोगा उस औरत ने, उसकी घुटन और कड़वाहट उसकी जिन्दगी से उभर कर आनी चाहिए।''[14] वह भारतीय स्त्री जिसे आरम्भ से ही यह आश्वासन प्राप्त हो कि पुरूष ही स्त्री के लिए अर्थोपार्जन करे। उसकी सुरक्षा का भार ले, और हर प्रकार से उसकी सुरक्षा का ढाल बने पर जब स्त्री यह सब देखती है कि वह सब झूठा आश्वासन है उसे अपने पति से कुछ भी नहीं मिलता, तो वही लग जाती है इस कार्य में कम से कम जीने का सहारा तो कुछ होना चाहिए। लड़की भी उससे कहती है – ''एक तुम्हीं करने वाली हो इस घर में – जान सकती हूँ? जब से बड़ी हुई हूँ तभी से देख रही हूँ, तुम सब कुछ सह कर भी रात–दिन अपने को इस घर के लिए हलाक करती रही हो और– ।''[15]

राकेश जी ने इस नाटक के माध्यम से जीवन के कटु सत्य और यथार्थ से परिचय कराया है। कुछ सामान्य समस्याओं को जो कि आज के युग में कई परिवारों की अपनी समस्याएँ हैं, सामने रखा है। घर की व्यवस्था का, माँ–बाप के बिगड़ते संबंधों का प्रभाव बच्चों पर अवश्य पड़ता है। पूरे के पूरे परिवार की व्यवस्था बिखरी और अव्यवस्थित है। अशोक के समान बेरोजगार लड़के जो घर में हर एक से बहस कर सकते हैं। बिन्नी के समान अपने प्रेम विवाह के बाद टूटी और हारी लड़की जो पुनः अपने माँ के पास वापस लौट आती है, किन्नी के समान जिद्दी, अशिष्ट लड़की, आज भारत के मध्यवर्गीय कई परिवारों में मिल जायेगी। बहुत ही स्पष्ट रीति से राकेश जी ने इस कटु यथार्थ को हमारे सामने रखा है और शायद इसीलिए ओम शिवपूरी ने कहा है– ''एक दिग्दर्शक की दृष्टि से आधे–अधूरे मुझे समकालीन जिन्दगी का पहला सार्थक हिन्दी नाटक लगता है– 'आधे–अधूरे' आज के जीवन के एक गहन अनुभव खंड को मूर्त करता है।''[16]

'पैर तले की जमीन' राकेश जी का ऐसा नाटक है जिसे उनकी मृत्यु के बाद कमलेश्वर जी ने पूरा किया है, जिसमें उन्होंने कुछ ऐसे पात्रों का चित्रण किया है जो मृत्यु के कगार पर खड़े हैं, पर उनके सामने उस वक्त भी मानव की महत्वपूर्ण जरूरतों को पूरा करने का प्रश्न है, वह है खाना–पीना और सेक्स। यहाँ नाटककार ने एक मनोवैज्ञानिक सत्य को दिखाया है, आसन्न मृत्यु को देखकर अवचेतन मन की इच्छाओं का उभरना बहुत सहज है, उन्हें ऐसा लगता है कि मरते–मरते दमित इच्छा की पूर्ति करे। एक असाधारण स्थिति के जरिये कुछ व्यक्तियों का साधारण, मनोवैज्ञानिक चित्रण लेखक ने किया है। इस नाटक में दो पात्र ऐसे भी हैं जो अपने ही आपसी तनाव में उलझे हुए हैं– सलमा और अय्यूव। ऐसा लगता है कि दोनों का विवाह ही अनचाहा हुआ है। सलमा जिसे चाहती है उससे वह विवाह न कर सकी, इस विवाह से वह खुश नहीं है, न ही अपने पति अय्यूब को प्रसन्न रख सकी। डॉ0 अपनी बीबी सकीना को पाकर खुश नहीं हो सका – उसी तरह जैसे मैं सलमा से शादी करके।''[17] भारतीय परिवेश में आज भी ऐसे कई विवाह हो जाते हैं जो जिन्दगी भर एक दूसरे के लिए भार के सिवाय और कुछ नहीं होते। आज भी कितने परिवार इस स्थिति में जी रहे हैं। एक दूसरे को छलते हुए, झूठे विश्वास में। राकेश जी की प्रायः सभी कृतियों में स्त्री–पुरूष के सम्बन्ध में इसी प्रकार का बिखराव एवं तनाव मिलता है।

सन्दर्भ

1. आषाढ़ का एक दिन – मोहन राकेश, पृष्ठ सं0 20
2. आषाढ़ का एक दिन – मोहन राकेश, पृष्ठ सं0 20
3. आषाढ़ का एक दिन – मोहन राकेश, पृष्ठ सं0 21
4. आषाढ़ का एक दिन – मोहन राकेश, पृष्ठ सं0 82
5. आषाढ़ का एक दिन – मोहन राकेश, पृष्ठ सं0 49
6. आषाढ़ का एक दिन – मोहन राकेश, पृष्ठ सं0 56
7. राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, लहरों के राजहंस प्रकाशित वक्तव्य से उद्घृत।
8. लहरों के राजहंस – मोहन राकेश, पृष्ठ सं0 67
9. लहरों के राजहंस – मोहन राकेश, पृष्ठ सं0 122
10. लहरों के राजहंस – मोहन राकेश, पृष्ठ सं0 121
11. लहरों के राजहंस – मोहन राकेश, पृष्ठ सं0 108
12. आधे–अधूरे – मोहन राकेश, पृष्ठ सं0 28
13. नटरंग– ब्रजमोहन शाह, अंक 10–11, पृ0 53 (1969)
14. सारिका –सुधा शिवपुरी – मार्च 1973, पृ0 33
15. आधे–अधूरे – मोहन राकेश, पृ0 सं0 39–40
16. नटरंग – ओम शिवपुरी, अंक–21, पृ0 19
17. पैर तले की जमीन – मोहन राकेश, पृ0सं0 60
18. शिवानी के कथा साहित्य में नारी का आत्मबोध आत्मबोध, अन्तर्वेदना, झटपटाहट, पीड़ा, अन्तर्द्वंद, विमर्श, आत्मसंघर्ष, अस्मिता।
19. मोहन राकेश के नाटकों में स्त्री–पुरूष के बदलते संबंध, रंगमंच, आन्तरिक द्वंद्व, अन्तर्वेदना, हताशा, अस्तित्व, विद्रोह, घुटन, तनाव, कुंठा, मनोवैज्ञानिक चित्रण, बिखराव